मोतीपुर जमींदारी कंपनी लिमिटेड

बनाम

बिहार राज्य एवं एक अन्य

–

राजा जानकीनाथ रॉय एवं नरेंद्र नाथ रॉय एंड कंपनी लिमिटेड

बनाम

बिहार राज्य एवं एक अन्य

17 अप्रैल, 1953

[पतंजलि शास्त्री, मुख्य न्यायाधीश, मुखर्जी, एस. आर. दास, गुलाम हसन एवं भगवती, न्यायमूर्तिगण]

बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950, धाराएँ 2 (ओ) और (आर), 3 — कंपनियों पर अधिनियम की प्रयोज्यता — "व्यक्ति", "स्वामी", "भू-धृति धारक" के अर्थ।

बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की क्रमशः धारा 2 (ओ) और धारा 2 (आर) में निहित "स्वामी" और "भू-धृति धारक" की परिभाषाओं में प्रयुक्त "व्यक्ति" शब्द के अंतर्गत भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 के तहत निगमित कंपनियां शामिल हैं। अधिनियम के विषय या संदर्भ में ऐसा कुछ भी प्रतिकूल नहीं है जो "स्वामी" और "भू-धृति धारक" शब्दों के भीतर किसी कंपनी के समावेश को रोकता हो। इसके विपरीत, अधिनियम के उद्देश्य को पूर्ण रूप से प्रभावी बनाने के लिए ऐसा समावेश आवश्यक है।

फार्मास्युटिकल सोसाइटी बनाम द लंदन एंड प्रोविंशियल सप्लाई एसोसिएशन, लिमिटेड (1880) 5 अपील वाद 857 के मामले को तथ्यों के आधार पर विभेदित किया गया।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1953 की दीवानी अपील संख्या 62 और 63। पटना उच्च न्यायालय (न्यायमूर्ति रामास्वामी और न्यायमूर्ति सरजू प्रसाद) के वर्ष 1952 के विविध न्यायिक

मामले संख्या 238 और 242 में पारित दिनांक 22 दिसंबर, 1952 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 132 (1) के तहत अपील।

दोनों अपीलों में अपीलकर्ता की ओर से: *पी. आर. दास* (उनके साथ *जे. सी. सिन्हा* और *एल. के. चौधरी*)।

दोनों अपीलों में उत्तरदाताओं की ओर से: *एम. सी. सीतलवाड़*, भारत के महान्यायवादी (उनके साथ *एल. एन. सिन्हा* और *बजरंग सहाय*)।

17 अप्रैल, 1953। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. आर. दास द्वारा सुनाया गया।

'**न्यायमूर्ति दास**— यह निर्णय 1953 की दीवानी अपील संख्या 62 और 1953 की दीवानी अपील संख्या 63 का निस्तारण करता है, जिनकी एक साथ सुनवाई की गई है।

मोतीपुर जमींदारी कंपनी लिमिटेड, जो 1953 की दीवानी अपील संख्या 62 में अपीलकर्ता है, का निगमन 1932 में भारतीय कंपनी अधिनियम के तहत हुआ था और इसका पंजीकृत कार्यालय बंगाल में स्थित है। यह मोतीपुर शुगर फैक्ट्री लिमिटेड नामक अपनी एक संबद्ध संस्था को गन्ने की आपूर्ति करती है। राजा जानकीनाथ रॉय और नरेंद्र नाथ रॉय एंड कंपनी लिमिटेड, जो 1953 की दीवानी अपील संख्या 63 में अपीलकर्ता है, का निगमन 1933 में भारतीय कंपनी अधिनियम के तहत हुआ था और इसका भी पंजीकृत कार्यालय बंगाल में है। इस कंपनी का बिहार राज्य के पूर्णिया और साथ ही पश्चिम बंगाल राज्य के मालदा में जमींदारी संपत्तियों पर स्वामित्व है। यह अन्य व्यवसायों के साथ-साथ बैंकर और वित्तीयक के रूप में अपना व्यवसाय संचालित करती है।

30 दिसंबर, 1949 को बिहार भूमि सुधार विधेयक नामक एक विधेयक बिहार विधानमंडल द्वारा पारित किया गया और राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखे जाने के बाद 11 सितंबर, 1950 को इस पर उनकी अनुमति प्राप्त हुई। इस प्रकार पारित और अनुमति प्राप्त अधिनियम 25 सितंबर, 1950 को बिहार राजपत्र में प्रकाशित किया गया, और उसी दिन अधिनियम की धारा 1(3) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा जारी एक अधिसूचना के माध्यम से इसे लागू कर दिया गया। जमींदारी संपदाओं के कई स्वामियों और भू-धृति धारकों ने बिहार राज्य के विरुद्ध उपयुक्त आदेश प्राप्त करने के लिए कानूनी कार्यवाही शुरू की, ताकि राज्य सरकार को इस

अधिनियम के प्रावधानों के तहत उनकी संपदाओं पर कब्जा करने से रोका जा सके। उनका दावा था कि यह अधिनियम बिहार विधानमंडल की विधायी सक्षमता से बाहर है और अन्यथा शून्य है। 12 मार्च, 1951 को, पटना उच्च न्यायालय की एक विशेष पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के कारण यह अधिनियम असंवैधानिक था। बिहार राज्य ने इस न्यायालय में अपील की। उस अपील के लंबित रहने के दौरान, अनंतिम संसद ने संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 पारित किया। मुख्य अपील के उत्तरदाताओं ने इस न्यायालय में कार्यवाही करते हुए यह तर्क दिया कि संविधान में संशोधन करने वाला वह अधिनियम अवैध था। हालाँकि, इस न्यायालय ने 5 अक्टूबर, 1951 को संशोधन अधिनियम की वैधता को बरकरार रखा। 6 नवंबर, 1951 को बिहार अधिनियम की धारा 3 के तहत अधिसूचनाएं जारी की गईं, जिनमें यह घोषणा की गई कि अधिसूचना में निर्दिष्ट अपीलकर्ताओं की कुछ तौजी राज्य को हस्तांतरित हो गई हैं और राज्य में निहित हो गई हैं। दोनों अपीलकर्ताओं ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत पटना उच्च न्यायालय में अलग-अलग आवेदन दायर किए, जिनमें परमादेश या उपयुक्त निर्देश या आदेश की प्रार्थना की गई थी ताकि उत्तरदाता को उक्त अधिसूचनाओं के आधार पर उनकी संबंधित संपदाओं या भू-धृतियों पर कब्जा करने से रोका जा सके, और साथ ही अन्य आनुषंगिक राहतें भी मांगी गईं। अधिनियम को शून्य घोषित करने वाले विशेष पीठ के आदेश के विरुद्ध बिहार राज्य द्वारा दायर अपीलों पर इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई हुई और इस न्यायालय ने अधिनियम की वैधता को बरकरार रखा, सिवाय उन कुछ प्रावधानों के जिनका उल्लेख बहुमत के निर्णय में किया गया था और जिन्हें पृथक्करणीय माना गया था। इसके बाद, दोनों अपीलकर्ताओं द्वारा पटना उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के तहत किए गए दो आवेदनों पर सुनवाई हुई और उस न्यायालय की एक पीठ ने 22 दिसंबर, 1952 को उन्हें खारिज कर दिया। वर्तमान अपीलें उक्त खारिजी के विरुद्ध पटना उच्च न्यायालय की अनुमति से दायर की गई हैं।

उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया प्रश्न यह था कि क्या यह अधिनियम, इसके सही अर्थान्वयन के आधार पर, भारतीय कंपनी अधिनियम के तहत निगमित कंपनियों की जमींदारी संपदाओं पर लागू होने के लिए अभिप्रेत था। अपीलकर्ताओं के इस तर्क के समर्थन में कि यह लागू

नहीं होता, यह तर्क दिया गया कि बिहार विधानमंडल के पास व्यापारिक निगमों या ऐसे गैर-व्यापारिक निगमों के संबंध में कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं था जिनके उद्देश्य केवल एक राज्य तक सीमित नहीं थे। इस संबंध में सूची-। की प्रविष्टियों 43, 44 और 45 का संदर्भ यह दिखाने के लिए दिया गया कि केवल संसद ही उन प्रविष्टियों में निर्धारित विषयों के संबंध में कानून बनाने के लिए अधिकृत थी। मुख्य तर्क यह था कि बिहार विधानमंडल ने इस अधिनियम को अधिनियमित करके संघ के कार्यक्षेत्र में अतिक्रमण किया है और इसलिए यह अधिनियम अवैध था। इस तर्क को अधिनियम के प्रावधानों और कंपनी अधिनियम के समापन संबंधी प्रावधानों के संदर्भ द्वारा और सुदृढ़ करने का प्रयास किया गया। पटना उच्च न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया और इन अपीलों के समर्थन में उपस्थित श्री पी.आर. दास ने पटना उच्च न्यायालय के निर्णय के इस हिस्से को चुनौती नहीं दी है।

श्री पी. आर. दास द्वारा दिया गया मुख्य तर्क यह है कि भले ही बिहार विधानमंडल निगमित कंपनियों की जमींदारी संपदाओं के अधिग्रहण के लिए कानून बना सकता था, लेकिन उसने इस अधिनियम के माध्यम से वास्तव में ऐसा नहीं किया। धारा 3 राज्य सरकार को अधिसूचना द्वारा यह घोषित करने के लिए प्राधिकृत करती है कि किसी स्वामी या भू-धृति धारक की संपदाएँ या भू-धृतियाँ राज्य को हस्तांतरित हो गई हैं और राज्य में निहित हो गई हैं। यह याद किया जाएगा कि इसी धारा के तहत राज्य सरकार ने 6 नवंबर, 1951 को राज्य के भीतर स्थित अपीलकर्ताओं की संपदाओं के संबंध में अधिसूचनाएँ जारी की थीं। श्री पी. आर. दास का मुख्य तर्क यह है कि अपीलकर्ता कंपनियाँ अधिनियम द्वारा परिभाषित "स्वामी" या "भू-धृति धारक" शब्दों के दायरे में नहीं आती हैं, और परिणामस्वरूप उनकी संपदा का कोई भी हिस्सा राज्य में निहित होने के लिए अभिप्रेत नहीं था और न ही वास्तव में निहित हुआ। धारा 2(ओ) द्वारा "स्वामी" को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—ऐसा व्यक्ति जो न्यास के रूप में धारण करता हो या अपने स्वयं के लाभ के लिए किसी संपदा या संपदा के किसी हिस्से का स्वामित्व रखता हो, और इसमें किसी स्वामी के उत्तराधिकारी और हित-उत्तराधिकारी शामिल हैं; और जहाँ कोई स्वामी अवयस्क या विकृतचित्त या जड़ हो, वहाँ उसका अभिभावक, समिति या अन्य कानूनी अभिरक्षक इसमें शामिल

है। धारा 2(आर) द्वारा भू-धृति धारक को इस प्रकार परिभाषित किया गया है— ऐसा व्यक्ति जिसने किसी स्वामी या किसी अन्य भू-धृति धारक से भूमि धारण करने का अधिकार आदि प्राप्त किया हो। तर्क यह है कि ऊपर संदर्भित दो परिभाषाओं में प्रयुक्त "व्यक्ति" शब्द, अधिनियम के संदर्भ में, किसी कंपनी को सम्मिलित नहीं करता है। यह स्वीकार किया गया है कि बिहार साधारण खंड अधिनियम की धारा 4(40) के तहत "व्यक्ति" शब्द में सामान्यतः एक कंपनी शामिल होगी, लेकिन श्री पी.आर. दास द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उस धारा में दी गई परिभाषाएं केवल तभी लागू होती हैं जब विषय या संदर्भ में कुछ भी प्रतिकूल न हो। उनका यह तर्क है कि "स्वामी" और "भू-धृति धारक" की परिभाषा यह संकेत देती है कि जमींदारी का स्वामित्व रखने वाली कोई कंपनी उस परिभाषा के अंतर्गत नहीं आती है। हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि एक कंपनी किसी संपदा या संपदा के किसी हिस्से का स्वामित्व रख सकती है और, वास्तव में, अपीलकर्ता कंपनियाँ केवल अपनी स्वामित्व वाली संपदाओं की रक्षा के लिए ही ये अपीलें लड़ रही हैं। इसलिए, वे परिभाषा के पहले भाग के अंतर्गत आती हैं। यह परिभाषा, शब्द का अर्थ बताने के बाद यह बताती है कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में इस परिभाषा में और क्या शामिल होगा, जैसे कि उत्तराधिकारी और हित-उत्तराधिकारी आदि। "उत्तराधिकारी" शब्द निश्चित रूप से एक कंपनी के संबंध में अनुपयुक्त है, लेकिन कंपनी का "हित-उत्तराधिकारी" होने में कुछ भी अनुपयुक्त नहीं है। यह इंगित किया गया है कि स्वामी की परिभाषा में कंपनी के निदेशकों, प्रबंध अभिकर्ताओं और समापन की स्थिति में कंपनी के समापक को शामिल करने का कोई प्रावधान नहीं है। यह परिस्थिति हमें यह मानने के लिए कोई ठोस कारण नहीं लगती कि परिभाषित "स्वामी" शब्द में कंपनी शामिल नहीं है। यह ध्यान देने योग्य है कि किसी व्यक्तिगत स्वामी के अभिकर्ता या दिवालिएपन की स्थिति में सरकारी समनुदेशिती या न्यासी को भी परिभाषा में शामिल नहीं किया गया है। उन स्वामियों का संदर्भ, जो अवयस्क, विकृतचित्त या जड़ हों और उनके अभिभावक आदि का संदर्भ देना स्पष्ट रूप से आवश्यक था क्योंकि ऐसे स्वामी कानूनी रूप से अक्षम होते हैं।

श्री पी. आर. दास हमें इस अधिनियम की धारा 43 के तहत बनाए गए विभिन्न धाराओं और नियमों का संदर्भ देते हैं ताकि यह दिखाया जा सके कि केवल प्राकृतिक व्यक्तियों को ही

अधिनियम द्वारा प्रभावित करने का इरादा था। उनका तर्क है कि कंपनी इसमें संदर्भित कार्यों को करने के लिए सक्षम नहीं है। श्री पी. आर. दास इस बात से इनकार नहीं करते कि एक निगमित कंपनी के लिए अपने निदेशकों, प्रबंध अभिकर्ताओं या अन्य अधिकारियों, जिन्हें उसकी नियमावली द्वारा उस हेतु सशक्त किया गया हो, के माध्यम से ये सभी कार्य करने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन उनकी दलील यह है कि भारतीय कंपनी अधिनियम के प्रावधानों को इस अधिनियम के प्रावधानों पर विचार करते समय सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। वह मुख्य रूप से *फार्मास्युटिकल सोसाइटी बनाम द लंदन एंड प्रोविंशियल सप्लाई एसोसिएशन, लिमिटेड*[1] के मामले पर भरोसा करते हैं, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि फार्मेसी अधिनियम, 1868 (31 और 32 वीआईसी., अध्याय 121) में प्रयुक्त "व्यक्ति" शब्द के अंतर्गत एक निगम नहीं आता। पृष्ठ 863 पर लॉर्ड सेलबोर्न एल.सी. की टिप्पणियों पर भरोसा किया गया। उस अधिनियम की प्रस्तावना में, अन्य बातों के साथ, यह उल्लेख किया गया था कि जन-सुरक्षा के हित में यह आवश्यक है कि वे व्यक्ति जो विषैले पदार्थों के खुदरा विक्रय, वितरण या संयोजन हेतु दुकानें खुले रखते हैं, तथा जो व्यक्ति केमिस्ट और दवा विक्रताओं के रूप में जाने जाते हैं, अपने व्यवसाय का पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान रखते हों।" इसने स्पष्ट रूप से फार्मास्युटिकल (भेषज) संबंधी मामलों में कुशल व्यक्तियों की परिकल्पना की थी, न कि उन निर्वैयक्तिक निगम निकायों की, जिन्हें उस विशेष व्यवसाय के बारे में कुछ भी पता नहीं होगा। वास्तव में, लॉर्ड ब्लैकबर्न ने *फार्मास्युटिकल सोसाइटी*[1] के मामले में हाउस ऑफ लॉर्ड्स में अपने संबोधन के दौरान इस प्रस्तावना का संदर्भ दिया और पृष्ठ 870 पर यह टिप्पणी की:-

"यहीं रुकते हुए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जिन्होंने उस भाषा का प्रयोग किया था, वे निगमों के बारे में नहीं सोच रहे थे। जनता की सुरक्षा के सभी वास्तविक उद्देश्यों के लिए, एक निगम एक अर्थ में अपने व्यवसाय का सक्षम ज्ञान रखता हुआ माना जा सकता है, यदि वह सक्षम निदेशकों, प्रबंधकों आदि को नियुक्त करता है। लेकिन वह संभवतः स्वयं में कोई सक्षम ज्ञान नहीं रख सकता। वह दार्शनिक (अमूर्त) इकाई, अर्थात् विधिक 'व्यक्ति'—निगम—स्वयं में पर्याप्त ज्ञान रखने में सर्वथा

---

1 (1880) एल.आर. 5 अपील वाद 857

1 (1880) एल.आर. 5 अपील वाद 857

असमर्थ है। और, मेरे विचार से, किसी निगम को 'केमिस्ट और ड्रगिस्ट के रूप में ज्ञात व्यक्ति' भी नहीं माना जा सकता।"

माननीय न्यायाधीश ने तब उस अधिनियम की धारा 1 और 15 के प्रावधानों का संदर्भ दिया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उस अधिनियम में "व्यक्ति" शब्द का अर्थ एक प्राकृतिक व्यक्ति था। उस मामले का प्रभाव यह है कि क्या किसी कानून में प्रयुक्त "व्यक्ति" शब्द को निगम को शामिल करने वाला माना जा सकता है, यह उस कानून के उद्देश्य और उस उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए पारित किए गए अधिनियमों के विचार पर निर्भर करता है। प्रस्तावना में वर्णित उस अधिनियम के उद्देश्य को देखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता था कि उस अधिनियम में प्रयुक्त "व्यक्ति" शब्द संभवतः किसी निगम को शामिल नहीं कर सकता था। पृष्ठ 863 के अंत में लॉर्ड सेलबोर्न ने 18 वीं धारा का संदर्भ देते हुए यह संकेत दिया कि विधायिका ने "व्यक्ति" शब्द से केवल व्यक्तिगत व्यक्तियों को संदर्भित किया था, क्योंकि उस अधिनियम के विषय में "व्यक्ति" शब्द के भीतर निगम को शामिल करना स्पष्ट रूप से प्रतिकूल था। श्री पी. आर. दास यह तर्क देते हैं कि लॉर्ड सेलबोर्न का निर्णय इस तथ्य पर आधारित था कि एक निगम "व्यक्ति" शब्द के दायरे में नहीं आ सकता था, क्योंकि वह स्वयं के द्वारा हस्ताक्षरित लिखित आवेदन नहीं दे सकता था। इसके आधार पर, श्री पी. आर. दास का तर्क है कि लॉर्ड सेलबोर्न के निर्णय के इस हिस्से का आवश्यक निहितार्थ यह है कि किसी अन्य कानून की व्याख्या करने के लिए कंपनी अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखना अनुमेय नहीं था। यदि लॉर्ड सेलबोर्न के संबोधन का यही निहितार्थ था, तो ससम्मान, हम इसे स्वीकार करने में असमर्थ हैं। वास्तव में, कोई व्यक्ति तब तक किसी कंपनी के बारे में नहीं सोच सकता जब तक कि उसके ध्यान में कंपनी अधिनियम के प्रावधान न हों, क्योंकि कंपनी 'कंपनी अधिनियम' की ही रचना है। इसका अस्तित्व, शक्तियां और अधिकार सभी उस अधिनियम द्वारा विनियमित होते हैं। श्री पी. आर. दास द्वारा भरोसा किए गए मामले में कुलीन सामंतों के संबोधनों का झुकाव यह है कि विचाराधीन उस विशेष अधिनियम का उद्देश्य उस अधिनियम में प्रयुक्त "व्यक्ति" शब्द के भीतर "निगम" को शामिल करने के पूरी तरह प्रतिकूल था, और जैसा कि हम समझते हैं, वह निर्णय इसके अलावा कुछ और प्रतिपादित नहीं करता है।

इस तर्क के समर्थन में कि अधिनियम का इरादा कभी भी जमींदारी की मालिक कंपनी को प्रभावित करने का नहीं था, श्री पी. आर. दास हमारा ध्यान भारतीय कंपनी अधिनियम की समापन संबंधी धाराओं की ओर आकर्षित करते हैं। उनका तर्क है कि समापन की योजना को बिहार अधिनियम की योजना में समाहित करना संभव नहीं है। उनका तर्क है कि यदि कंपनी की जमींदारी संपत्तियों को ले लिया जाता है और मुआवजे का भुगतान अहस्तांतरणीय बंधपत्र द्वारा किया जाता है, तो यदि कंपनी समापन में जाती है, तो समापन के कानून को लागू करना असंभव होगा। उनके अनुसार, उस न्यायालय के क्षेत्राधिकार, जहाँ समापन की कार्यवाही चल रही है और जो संभवतः किसी अन्य राज्य में हो सकता है, और बिहार सरकार तथा उसके अधिकारियों के बीच क्षेत्राधिकार का संघर्ष होगा। हमें इस तर्क में कोई दम नज़र नहीं आता। धारा 3 के तहत अधिसूचना जारी होने पर, जमींदारी संपदा राज्य में निहित हो जाएगी और कंपनी का उसमें कोई हित नहीं रह जाएगा। उसका एकमात्र अधिकार मुआवजा प्राप्त करना होगा। समापन की स्थिति में, समापक को इस अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए उपचार का अनुसरण करना होगा। वह या कंपनी किसी भी तरह से उस सरकारी समनुदेशिती या सरकारी न्यासी की तुलना में बदतर स्थिति में नहीं होंगे, जो किसी ऐसे व्यक्तिगत स्वामी के लिए नियुक्त किया गया हो जो किसी अन्य राज्य में दिवालिया हो गया हो।

अंततः, श्री पी. आर. दास अधिनियम की धारा 41 पर अत्यधिक भरोसा करते हैं और यह तर्क देते हैं कि वह धारा किसी कंपनी पर पूरी तरह से अनुपयोज्य होगी और यह परिस्थिति स्वयं में यह संकेत देगी कि बिहार विधानमंडल का यह इरादा नहीं था कि संपदा की मालिक किसी कंपनी को इस अधिनियम द्वारा शासित किया जाना चाहिए। यह सत्य है कि एक निगम को राजद्रोह, घोर अपराध या व्यक्तिगत हिंसा से जुड़े किसी दुष्कर्म के लिए, अथवा ऐसे किसी अपराध के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता जिसके लिए एकमात्र दंड कारावास या शारीरिक दंड है। (हेल्सबरी, दूसरा संस्करण, खंड IX, अनुच्छेद 5, पृष्ठ 14)। धारा 41 केवल कारावास द्वारा दंड का प्रावधान नहीं करती है। श्री पी. आर. दास का सुझाव है कि कारावास या जुर्माना लगाया जाना अपराध की गंभीरता पर निर्भर करेगा, न कि अपराधी के चरित्र पर। हालाँकि, यह तर्क लॉर्ड

ब्लैकबर्न की उस राय के प्रतिकूल प्रतीत होता है जो उसी मामले प्रतिवेदन के पृष्ठ 869-870 पर दी गई है जिस पर श्री पी. आर. दास ने भरोसा किया है। *'डायरेक्टर ऑफ पब्लिक प्रॉसिक्यूशन बनाम केंट एंड ससेक्स कॉन्ट्रैक्टर्स लिमिटेड'*[1] और *'रेक्स बनाम आई.सी.आर. हॉलेज, लिमिटेड एवं अन्य'*[2] के हालिया मामले यह संकेत देते प्रतीत होते हैं कि एक निगम को ऐसे अपराध के लिए भी दोषी ठहराया जा सकता है जिसमें इच्छाशक्ति के कार्य या मानसिक स्थिति की आवश्यकता होती है। हालांकि, इस विचार को अलग रखते हुए कि क्या किसी कंपनी को जानबूझकर की गई विफलता या उपेक्षा का दोषी ठहराया जा सकता है—जिसके बारे में हमें इस अवसर पर कोई निश्चित राय व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है—कंपनी के अधिकारियों या एजेंटों पर धारा 41 के प्रावधानों को लागू करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। धारा 3(1) के तहत अधिसूचना प्रकाशित होने पर, संपदा राज्य में निहित हो जाती है। धारा 4 ऐसे निहित होने के परिणामों को निर्धारित करती है। उस धारा का खंड (जी) समाहर्ता को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह निर्धारित तरीके से तामील किए गए लिखित आदेश द्वारा ऐसी संपदा या भू-धृति या उसके किसी हिस्से पर कब्जा रखने वाले किसी भी व्यक्ति से आदेश में निर्दिष्ट तिथि तक कब्जा छोड़ने की अपेक्षा कर सके और उक्त आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कदम उठा सके या बल प्रयोग कर सके। यदि संपदा पर कब्जा रखने वाला कंपनी का कोई अधिकारी या एजेंट जानबूझकर ऐसे कानूनी आदेश का पालन करने में विफल रहता है या उसकी उपेक्षा करता है, तो निश्चित रूप से उसके विरुद्ध धारा 41 के तहत कार्यवाही की जा सकती है। इसी प्रकार, धारा 40 के तहत, उसमें उल्लिखित अधिकारी संपदा के निहित होने की तिथि से पहले या बाद में किसी भी समय, निर्धारित तरीके से तामील किए गए लिखित आदेश द्वारा, किसी स्वामी या भू-धृति धारक, या ऐसी संपदा या भू-धृति पर कब्जा रखने वाले किसी अन्य व्यक्ति, अथवा ऐसे स्वामी, भू-धृति धारक या अन्य व्यक्ति के किसी एजेंट या कर्मचारी से यह अपेक्षा करने के लिए प्राधिकृत हैं कि वे आदेश में निर्दिष्ट समय और स्थान पर ऐसे दस्तावेज़, कागजात या पंजी पेश करें या ऐसी संपदा या भू-धृति से संबंधित ऐसी जानकारी प्रदान करें, जिसकी ऐसा अधिकारी इस अधिनियम के किसी भी प्रयोजन के लिए समय-

1 [I944] 1 के.बी. 146.

2 [I944] 1 के.बी. 551.

समय पर अपेक्षा करे। ऐसे आदेश का पालन करने में जानबूझकर की गई विफलता या उपेक्षा, कंपनी के अवज्ञाकारी अधिकारी या एजेंट को स्पष्ट रूप से धारा 41 के तहत प्रदान किए गए दंड के दायरे में ले आएगी। इसलिए, धारा 41 अनिवार्य रूप से निगमित कंपनियों पर इस अधिनियम के लागू होने को वर्जित नहीं करती है।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि एक कंपनी संपत्ति का स्वामित्व रखने और उसे धारण करने के लिए सक्षम है। आक्षेपित अधिनियम के संपूर्ण उद्देश्य को *'बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह'*[1] के मामले में न्यायमूर्ति महाजन द्वारा इस प्रकार बताया गया है:

"अब यह स्पष्ट है कि कुछ व्यक्तियों के हाथों में भूमि के बड़े भूखंडों का संकेंद्रण उस सिद्धांत के विपरीत है जिस पर भारत का संविधान आधारित है। इसलिए, आक्षेपित अधिनियम द्वारा परिकल्पित अधिग्रहण का उद्देश्य कुछ व्यक्तियों के हाथों में भूमि के बड़े भूखंडों और उत्पादन के साधनों के संकेंद्रण को समाप्त करना है, और राज्य के हाथों में आने वाले भौतिक संसाधनों के स्वामित्व और नियंत्रण को इस प्रकार वितरित करना है जिससे यथासंभव सार्वजनिक हित साधा जा सके। दूसरे शब्दों में, संक्षेप में कहें तो, इस अधिनियम के पीछे का उद्देश्य समुदाय के सामान्य लाभ के लिए बिहार की भूमि वितरण प्रणाली में सुधार लाना है।"

इस उद्देश्य को देखते हुए, एक व्यक्तिगत स्वामी और एक ऐसी कंपनी, जो संपदाओं या भू-धृतियों का स्वामित्व रखती है, के बीच विभेद करने का कोई कारण नहीं है। वास्तव में, अधिनियम के विषय या संदर्भ में न केवल ऐसा कुछ भी प्रतिकूल नहीं है जो "स्वामी" की परिभाषा के अंतर्गत संपदा की मालिक किसी कंपनी के समावेश को रोकता हो, बल्कि अधिनियम के मूल उद्देश्य को पूर्ण रूप से प्रभावी बनाने के लिए ऐसा समावेश अत्यंत आवश्यक है।

1953 की अपील संख्या 63 में श्री पी.आर. दास एक अतिरिक्त बिंदु उठाते हैं, अर्थात्, उस अपील में अपीलकर्ता कंपनी के पास ऐसी संपदाएँ हैं जो बिहार के पूर्णिया और पश्चिम बंगाल के मालदा में स्थित हैं, लेकिन उसे पूर्णिया में एक ही सरकारी राजस्व का भुगतान करना पड़ता है। यह आगे आरोप लगाया गया है कि अपीलकर्ता कंपनी ने संपदाओं के कुछ हिस्सों को 'पटनी पट्टों'

---

1 [1952] एस.सी.आर. 889 पृष्ठ सं. 941.

पर दे रखा है, जिनमें से प्रत्येक पटनी में बिहार के भीतर और बाहर दोनों जगह स्थित भूमि शामिल है। तर्क यह है कि संपदा के उस हिस्से के अधिग्रहण ने, जो बिहार में स्थित है, अपीलकर्ता कंपनी के लिए राजस्व का भुगतान करना या अपना किराया वसूल करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य बना दिया है। संपदा का वह हिस्सा जो बिहार में है, उसे शेष हिस्से से अलग नहीं किया जा सकता है और इसलिए केवल बिहार में स्थित संपदा के हिस्से को शामिल करने वाली अधिसूचना अवैध है। हमें नहीं लगता कि इस तर्क में कोई सार है। जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा कहा गया है, यह राजस्व के प्रभाजन और किराए के प्रभाजन का एक साधारण मामला है। इस तरह के प्रभाजन की आवश्यकता संभवतः अधिसूचना की वैधता को प्रभावित नहीं कर सकती है।

उपरोक्त कारणों से ये अपीलें विफल होती हैं और इन्हें वाद-व्यय सहित खारिज किया जाता है।

अपीलें खारिज।

अपीलकर्ताओं के एजेंट: *आर. आर. विश्वास।*

उत्तरदाताओं के एजेंट: *जी. एच. राज्याध्यक्ष।*

खंडन *(डिस्क्लेमर)*- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।